संपादकीय

सत्यांश

नए वर्ण का उदय

पिछले दिनों एक चौंकाने वाली खबर आई कि उत्तर प्रदेश विधानसभा सचिवालय में चपरासी पद की 368 रिक्तियों के लिए लगभग तेईस लाख आवेदन किए गए। जनसंख्या और बेरोजगारी में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में तेईस लाख आवेदन की बात तो फिर भी समझ में आती है, लेकिन इनमें 255 पीएच.डी, 25 हजार स्नातकोत्तर तथा डेढ़ लाख से अधिक स्नातक सहित अभियांत्रिकी एवं एमबीए जैसे व्यावसायिक कोर्स किए उम्मीदवारों के होने की बात गले नहीं उतरती। जिस पद के लिए इतने आवेदन प्राप्त हुए, उसके लिए न्यूनतम योग्यता पाँचवीं पास रखी गई थी। पाँचवीं पास का मतलब आजकल अनपढ़ ही है, क्योंकि बिना कुछ लिखे-पढ़े भी इसका प्रमाण पत्र बनवा लेना सहज रूप से प्रचलित है। जहाँ पाँचवीं की जरूरत है, वहाँ पीएच.डी. वाले आवेदन कर रहे हैं। इसे देखकर सभी चयन आयोगों को उम्मीदवारों के लिए न्यूनतम-अधिकतम आयु-सीमा की तरह न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता के साथ-साथ अधिकतम शैक्षणिक योग्यता की सीमा भी निश्चित करने के लिए सोचना पड़ सकता है।

स्नातकोत्तर, एम.फिल., पीएच.डी सर्वोच्च व अंतिम वर्गीय पढ़ाई है। किसी विषय में स्नातकोत्तर होना निष्णात व मास्टर होना है, जबकि पीएच.डी से दक्षता-विशेषज्ञता विकसित होती है, किंतु यह सब तब होता है जब अध्ययन अनुसंधान ईमानदारी व निष्ठा से हो। ईमानदारी से संपन्न न भी हो, तब भी डिग्री-उपाधि मिल जाती है और शिक्षा-साक्षरता का ग्राफ काफी ऊपर उठ जाता है। इस स्थिति में सभी प्रतियोगी परीक्षाओं व साक्षात्कारों में प्रतिभागियों की संख्या 'दिन दुनी रात चौगुनी' बढ़ती जा रही है। कुछ प्रतियोगिताओं में सौ-हजार पदों के लिए एक करोड़ से आगे पहुँच चुकी है। अराजक, दिशाहीन व छद्म शिक्षा व्यवस्था के कारण, तो दूसरी तरफ रोजगार के साधनों के संतुलित विकास और समुचित प्रबंध के अभाव के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है।

1990 ई. के बाद अघोषित अराष्ट्रीयकरण अथवा निजीकरण का जो नया खेल शुरू हुआ, उसका दुष्परिणाम आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। खूब सोच-समझकर सरकारी, सार्वजनिक व स्वायत्त उपक्रमों-संस्थानों को धीरे-धीरे कबाड़ा करते हुए निजी उपक्रमों-संस्थानों का जाल सर्वव्यापक बना दिया गया है। एम्स, आईआईटी, इसरो जैसे कुछ विश्वसनीय संस्थाओं को छोड़कर अधिकांश सरकारी स्कूल, कॉलेज, अकादमी, विश्वविद्यालय, अस्पताल, दूरसंचार माध्यम, यातायात साधन खस्ता हाल में हैं, जबकि इनका बजट पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। इन संस्थाओं के कर्ता-धर्ता और नौकर मालामाल हो गए हैं। उनका रसूख व रुतबा बढ़ गया है, जबकि काम और परिणाम के मामले में संस्थान फिसड्डी हो रहे हैं। जर्जरता, अस्त-व्यस्तता और कुव्यवस्था के कारण सार्वजनिक संस्थाओं की ख्याति मटियामेट हो रही है। इनकी स्तरीयता व गुणवत्ता निजी संस्थानों में पर्यवसित हुई है। कर्मचारी जब सरकारी नौकरी में होता है, तब कामचोरी व भ्रष्टाचार करता है, लेकिन जब प्राइवेट नौकरी करता है, तब डर के मारे लगन से परिणाममूलक कार्य करता है। यह स्थिति आदमी की निम्नतर कार्य-संस्कृति का द्योतक है कि वह डर-भय की मजबूरी में तो कंपनी-संस्थान के आर्थिक हित में काम सही ढंग से करता है, पर सार्वजनिक क्षेत्र में कर्तव्यनिष्ठा व दायित्व के साथ काम नहीं करता।

आजकल निजी शिक्षण संस्थान हर जगह कुकुरमुत्ते की तरह खुल गए हैं। इनका सर्वोपरि उद्देश्य रुपये कमाना-बनाना है, प्रवेशार्थियों से रुपयों के लेन-देन की बात पहले होती है, डिग्री-योग्यता बाद में पूछी जाती है या नहीं भी पूछी जाती। परीक्षाओं में उत्तीर्ण कराने की गारंटी और उसके लिए तय राशि पहले जमा करा ली जाती है। ये निजी संस्थान किनके हैं? सब जानते हैं कि नेताओं, नौकरशाहों, पूँजीपतियों, व्यवसायियों के ही प्रायः हैं, जिस कारण सरकार, प्रशासन व पूँजी का पूरा संरक्षण इन्हें प्राप्त होता है। दूसरी ओर, बड़े महानगरों-शहरों में स्थित कुछएक

सरकारी-सार्वजनिक कार्यालयों, संस्थानों के अतिरिक्त ज्यादातर जगह पढ़ाई या कार्य की खानापूर्ति या कोरम पूरा किया जाता है, डिग्रियाँ बाँटी जाती हैं, 'संबद्धता और अनुदान का मानक' पूरा कराते हुए शिक्षा लेने-देने की मनमर्जी पूरी होती है। यह सब 'अँधेर नगरी, चौपट राजा; टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' को चरितार्थ करता है।

सरकार-प्रशासन और शोध-संस्थानों के लिए अनुसंधानात्मक अनुमान लगाना कहाँ कठिन है कि अगले पाँच-दस वर्षों या एक कालावधि विशेष में नौकरी, पेशा, व्यवसाय, उद्योग, बाजार आदि के किन-किन क्षेत्रों में कितने-कितने लोगों की आवश्यकता होगी। उसी अनुपात में सुव्यवस्थित शिक्षण संस्थानों और शिक्षार्थियों की रुचि मेधा का तालमेल बिठाना असंभव नहीं है। बाकी अन्य लोगों के लिए भी कार्य की जरूरत पैदा करना और कार्य की जरूरत के अनुरूप लोगों को तैयार करना मुश्किल नहीं है। जहाँ पाँच-पाँच लाख ड्राइवरों, चिकित्सकों की जरूरत हो, वहाँ यदि पचास-पचास लाख तैयार होंगे, तो स्वाभाविक है कि उन्हें खलासीगिरी और कंपाउंडरी करने के लिए भी जगह नहीं मिलेगी। इस प्रकार भेड़ियाधँसान तो होगी, फिर भी अच्छे व योग्य डाक्टरों-ड्राइवरों की कमी बनी रहेगी। आजकल भी बहुत जगह जरूरत से ज्यादा प्रतियोगियों की भीड़ है, वहीं कई जगह सुयोग्य-सक्षम लोगों का अभाव खटक रहा है। लोग छोटी-मोटी सरकारी नौकरियों के लिए उम्र कम कर-करके एक ही परीक्षा मध्यमा, मैट्रिक, इंटर आदि की डिग्री दुबारा-तिबारा लेते हैं, ताकि उम्र की सीमा प्यार की तरह नौकरी में भी आड़े न आए। वर्गीय पढ़ाई का अहं और नवजवानी की मस्ती रोजगार की बात आते-आते उतरने लगती है और एमबीए, स्नातकोत्तर तथा पीएच.डी. वालों को चपरासी की नौकरी के लिए भीषण संघर्ष करना पड़ता है।

कौन जानता है कि तेईस लाख आवेदकों में से कितने आरक्षित श्रेणी के हैं और कितने अनारक्षित श्रेणी के? आवेदन के बारे में महत्त्वपूर्ण खुलासा करने वालों ने गनीमत है कि यह नहीं बताया है, लेकिन इतना स्वतः स्पष्ट है कि इनमें कम-अधिक सभी जाति-वर्ग के लोग हैं। इस प्रकार चतुर्थ श्रेणी वाली सरकारी नौकरी के लिए तेईस लाख लोग परंपरागत जाति-वर्ण व्यवस्था से परे आदेशपाल की भूमिका निभाने को तैयार हैं। पहले यह सेवा-कार्य चौथे वर्ण यानी शूद्र के लिए निर्धारित तथा, जिनके बारे में पौराणिक मान्यता है कि ये ब्रह्मा के पैर से उद्‌भूत हुए, पर अब जो ये तेईस लाख तैयार हैं, वे किसके प्रताप-तिरस्कार के प्रतिफल हैं? समाज सुधार, अस्पृश्यता निवारण और आरक्षण आंदोलन से जो आज तक नहीं हो सका, वह बेरोजगारी की भयावह समस्या के प्रति अकर्मण्यता से फलीभूत हो गया कि पढ़ा-लिखा वर्ग भी अब पानी पीने से मना करना तो दूर, खुद पानी पिलाने के लिए मानसिक रूप से तैयार है। कभी तुलसीदास ने कलियुग में वर्णव्यवस्था के टूटने का आत्मक्षोभ बड़ी बेबाकी से सामने रखा था, वह सब आज साकार हुआ दिखता है। यहाँ भी दिक्कत है कि इस मौके का सौभाग्य तो केवल 368 को प्राप्त होगा, बाकी को पुनः अपनी जाति व वर्ण की ओर रुख करना पड़ सकता है। कोई भी नौकरी करने मात्र से परंपरागत जाति-वर्ण खत्म हो जाएगा - यह सोचना जल्दबाजी है, लेकिन यह क्या कम है कि इतने सारे लोग सरकार के सबसे निचली चौथी श्रेणी की भूमिका लेने को तत्पर हैं।

सरकार खुश हो सकती है कि शिक्षा-साक्षरता का ऐसा व्यापक विस्तार किया कि जहाँ पाँचवीं पास की आवश्यकता है, वहाँ बी.ए., एमए., पीएच.डी. वाले लाखों की संख्या में उपलब्ध हो रहे हैं। अनेक बुराइयों की जड़ जाति व्यवस्था के उन्मूलन का ऐसा अचूक उपाय किया कि बड़ी संख्या में लोग चतुर्थ श्रेणी और परंपरागत रूप में सबसे निचले माने गए चौथे वर्ण वाले सेवा-कार्य करने के लिए तरस-तड़प रहे हैं। किसी से भी पानी जरूर पिलवाया जा सकता है; पर काफी सुशिक्षित बी.ए., एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी., एमबीए और अभियांत्रिकी पास लोगों से यह काम कराना सर्वदा अनुचित है - चाहे वे किसी भी जाति-वर्ण के हों। उनके पेट पर लात मारने का आशय नहीं है, बल्कि उनके लायक काम के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। प्राचीन समय में भी तो ऐसे ही कार्य की भूमिका तलाशते-तलाशते जाति-वर्ण बन गए थे। आज फिर नए वर्ण-वर्ग का उदय हो रहा है, लेकिन फर्क यह है कि तब पढ़े-लिखे को प्रथम व उच्च स्थान प्राप्त था, आज चौथा व निचला स्थान पा लेना भी इनके लिए आसान नहीं है। समाज में इतनी जल्दी ऐसा क्रांतिकारी बदलाव आश्चर्यजनक तो है न!